15 स्कूल में नेतृत्व : कृपया हमें मार्ग दिखाओ !

अमुक्ता महापात्र



नेतृत्व के अनेक रूप हैं जिनका उद्‌भव विभिन्न ऐतिहासिक सन्दर्भों में हुआ। वे आज भी हमारे बीच मौजूद हैं, हालाँकि थोड़े भिन्न स्वरूपों में। नेतृत्व के ये रूप–स्वरूप आज भी अपनी भूमिका और समाज के साथ अपनी अन्तःक्रिया को सच्चाई से निभा रहे हैं। हमारे पास नए रूप में ऐसे योद्धा हैं जो युद्धभूमि की बजाय अब कम्पनियों के निदेशक मण्डलों में दिखाई देते हैं, या अग्रणी उद्यमी हैं। नई शक्ल में राजा हैं जो अब अनेक अवसरों की शोभा बढ़ाते हैं और संरक्षक की भूमिका निभाते हैं। परदे के पीछे रहने वाले सलाहकार हैं जिन्हें आज के परामर्शदाताओं के रूप में पहचाना जा सकता है। आज एक नए अवतार में पुराने दौर के चरवाहे हैं जो संस्थाओं और संगठनों में भटक जाने वालों को राह पर लाने का काम करते हैं; और शायद कई अन्य प्रकार के नायक भी हैं। इनमें से कई नायक आज भी वर्तमान शिक्षा–क्षेत्र को प्रभावित करने के लिए जिन्दा हैं। अतीत हमारे अवचेतन में मौजूद खिलाड़ी है मगर हम उसे स्वीकारते नहीं – यही बात वर्तमान स्थिति को भरमाने वाला बना देती है, और इसी कारण हम वर्तमान को, मानसिकता को प्रभावित करने वाले उसके आयामों के साथ, नहीं समझ पाते।

स्कूलों में नेतृत्व और शिक्षा कार्यक्रमों के लिए एक ‘मुश्किल जगह’ और भी है। वह यह, कि मूल तौर पर जो काम किए जाने की जरूरत है, उसकी प्रकृति अमूर्त है; और मार्गदर्शन करने वाले नेतृत्व को अपने शिक्षकों और कर्मचारियों को इस रूप में सक्षम बनाना है कि वे इन अमूर्त लक्ष्यों की ओर जा पाएँ। समस्या यह भी है कि मार्गदर्शन के लिए कोई स्पष्ट सिद्धान्त नहीं हैं। इसके परिणामस्वरूप, चेतन या अचेतन रूप में, कैसे भी, विभिन्न भागीदारों के प्रयास हर चीज को, बल्कि किसी भी चीज को, कुछ ऐसा बना देने के होते हैं जिसे लोग देख सकें और अपनी पकड़ में रख सकें, ताकि वे प्रत्यक्ष, ठोस तौर पर यह कह सकें कि हम जो करने चले थे वह हमने हासिल कर लिया है। अकसर ये शिक्षा–कार्यक्रम की गैर–जरूरी या परिधि की बातें होती हैं, इसलिए ये हमें गहरे आधारभूत मुद्दों से सम्बोधित करवाने के बजाय उपलब्धि का भ्रम मात्र पैदा करती हैं।

“स्कूलों में नेतृत्व और शिक्षा कार्यक्रमों के लिए एक ‘मुश्किल जगह’ और भी है। वह यह, कि मूल तौर पर जो काम किए जाने की जरूरत है, उसकी प्रकृति अमूर्त है; और मार्गदर्शन करने वाले नेतृत्व को अपने शिक्षकों और कर्मचारियों को इस रूप में सक्षम बनाना है कि वे इन अमूर्त लक्ष्यों की ओर जा पाएँ।”

भ्रम और अस्पष्टता की इस संस्कृति में अच्छा प्रदर्शन करने का दबाव रहता है। इसी के बीच नेतृत्व प्रदान करने वाले लोग, चाहे वे स्कूलों के प्रमुख हों, या शैक्षणिक पर्यवेक्षक, समन्वयक, प्रशासनिक अधिकारी और प्रशिक्षक हों या परामर्शदाता, सब ऐसे साक्ष्य निर्मित करने के जाल में फँस जाते हैं जो संगठन या व्यवस्था के अच्छे प्रदर्शन को दर्शाते हों। परिणामस्वरूप, स्कूल अन्ततः विद्यार्थियों का मूल्यांकन जानकारियों के टुकड़ों के आधार पर करने लगते हैं न कि सार्थक ज्ञान के आधार पर। बच्चों की प्रतिभा का प्रदर्शन बस ‘वार्षिक उत्सवों’ पर किया जाता है, उसका सम्बन्ध समुदाय की अभिव्यक्ति के माध्यमों से नहीं जोड़ा जाता। शिक्षकों के लिए परिणाम दर्शाने वाली ऐसी योजनाएँ बनाई जाती हैं जो शीघ्र ही यान्त्रिक कर्मकाण्डों में परिवर्तित हो जाती हैं; या फिर हार मानकर प्रयास करना बन्द कर दिया जाता है और बच्चों को स्कूली शिक्षा का अपना रास्ता भटकते हुए तय करने के लिए छोड़ दिया जाता है।

पर इसका मतलब यह नहीं है कि स्कूली शिक्षा और सीखने–सिखाने में हर चीज अमूर्त या अस्पष्ट होती है। उसमें ऐसे क्षेत्र भी हैं जिनकी रूपरेखा स्पष्ट रूप से बनाए जाने की जरूरत होती है। उदाहरण के लिए, न केवल विषयवस्तु बल्कि सीखने–सिखाने की प्रक्रियाएँ भी; या शिक्षक के लिए ऐसा ढाँचा जिसके भीतर रहते हुए वह योजना बना सके; कुछ खास कौशल विकसित करने के लिए एक छोर से दूसरे छोर तक के भिन्न–भिन्न प्रकार के विचार; एक समग्र योजना जिसमें से बच्चे अपने लिए रुचिकर तत्वों का चुनाव कर सकें। आवश्यकता है कि ये सिद्धान्त आधारित शिक्षण और जीवन के केन्द्र तक पहुँचें, जिसे प्रदर्शित और परिभाषित भी किया जा सकता हो। जिन शेष बातों को स्पष्ट रूप से परिभाषित न भी किया जा सके, शायद उनका वर्णन किया जा सकता है। शिक्षा समुदाय को सहजता के साथ यह स्वीकार करना होगा कि सीखने और जीने के कुछ बेहद महत्वपूर्ण पहलू अपनी प्रकृति में आकारहीन ही होते हैं।

कभी–कभी शिक्षाविद यह मत व्यक्त करते हैं कि स्कूल की सारी पढ़ाई को मापने योग्य बनाया जा सकता है। कुछ लोग यह तर्क देते हैं कि उसमें कुछ भी नापने योग्य नहीं बनाया जा सकता। यदि यह ‘सब कुछ या कुछ भी नहीं’ का द्विभाजन बन जाता है तो बच

निकलने के अनेक रास्ते निकल आते हैं, और स्कूल का काम – यानी एक ऐसा माहौल तैयार करना जिसमें बच्चों को "जीवन के लिए मदद" के रूप में शिक्षा मिल पाए – अकसर थम जाता है।

आज स्कूल का नेतृत्व करने वालों की यह वह पृष्ठभूमि है जिसे आमतौर पर अभिव्यक्त नहीं किया जाता। ये स्कूल–नायक अकसर नेतृत्व करने के लिए प्रशिक्षित नहीं होते बल्कि किन्हीं अन्य कार्यों के लिए योग्यता–प्राप्त होते हैं। इसी के चलते उनके द्वारा किए जाने वाले अधिकांश कार्य और गतिविधियाँ तदर्थ प्रकार की होती हैं। ठोस सिद्धान्तों का स्थान नारे ले लेते हैं और आजमाई गई पद्धतियों पर व्यक्तिगत धारणाएँ हावी हो जाती हैं।

कार्यक्षेत्रों की सीमाएँ बँधी रहती हैं, और उनके बीच आदान–प्रदान की छूट नहीं रहती। सम्बन्धों का बनना–बनाना पदानुक्रम के तहत ही होता है और यथास्थिति का सख्ती से पालन किया जाता है। ये तरीके अव्यक्त लक्ष्यों और अस्पष्ट समग्र उद्देश्यों के साथ काम करने के भय से बचाव और सुरक्षा के तरीके हैं। बाहरी तौर पर एक व्यवस्था बनाए रखी जाती है, यद्यपि आन्तरिक कामकाज अव्यवस्थित रहता है। और इसलिए, मामूली बातें सबसे महत्वपूर्ण हो जाती हैं और वे ही एक पंगु व्यवस्था की बैसाखियाँ बन जाती हैं।

यह परिदृश्य हौसला बढ़ाने वाला नहीं है। इसके बावजूद, इन्सानी जज्बे और भारतीय सोच की विशिष्ट खूबी ने बचे रहने और जोश तथा ऊर्जा के साथ जीने के तरीके खोज लिए हैं। हाल ही में छिन्दवाड़ा, मध्य प्रदेश के आदिवासी समुदायों के बच्चों के लिए बने एक स्कूल का दौरा करते हुए मैंने पाया कि समुदाय और शिक्षक परस्पर प्रेम और सहृदयता से पेश आते हैं और बच्चों के अधिकार के लिए संघर्षरत हैं। यहाँ एक गैर–सरकारी संगठन शिक्षा का अधिकार कानून तथा अन्य राष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं की आवश्यकताओं को पूरा करने में समुदाय की मदद भी कर रहा था। शिक्षक को न तो खलनायक और न ही व्यवस्था के शिकार की तरह देखा जा रहा था। वह भी समुदाय के साथ ऐसी हार्दिक उदारता से काम कर रहा था जो आसानी से देखने को नहीं मिलती। बच्चों ने स्कूल में दिए जाने वाले दण्डों के बारे में एक आम शिक्षक का मजाक बनाते हुए एक नाटक प्रस्तुत किया। शिक्षकों ने बिना किसी झेंप के न केवल सरल भाव से इसे स्वीकारा बल्कि उसका आनन्द भी उठाया।

'कार्यकारी प्रधान–शिक्षक' एक शिक्षक ही की तरह सहज, और स्वतःस्फूर्त नायक जैसा था। वह कक्षा की संस्कृति और माहौल में बदलाव लाने में मदद कर रहा था; समुदाय को स्कूल का गतिशील, अभिन्न अंग होने की छूट दे रहा था; और गैर सरकारी संगठन के कार्यकर्ताओं के लिए भी कुछ करने की गुंजाइश छोड़ रहा था। और साथ ही, गाँव में शिक्षा विभाग का प्रतिनिधि होने के नाते आवश्यकता पड़ने पर वह अपने विभाग का पक्ष भी दृढ़ता से रखता था।

कमी थी तो वह शिक्षा की गुणवत्ता में थी। और इसे दूर करने के लिए उसे न तो विभाग से और न ही किसी अन्य स्रोत से कोई मदद मिल रही थी। इस क्षेत्र में उसकी सीमाओं का कारण शिक्षकों को दिया जाने वाला गैर–पेशेवर प्रशिक्षण और बाद में निरन्तर मार्गदर्शन का अभाव था। शिक्षक के तौर पर स्वयं उसके विकास के लिए या दूसरों के लिए मार्गदर्शक की भूमिका निभाने हेतु किसी व्यवस्था का न होना भी एक कारण था। गुणवत्ता में कमी इस बात से जाहिर थी कि बच्चों की अवधारणात्मक समझ की तुलना उन्हीं के विशेष आयु वर्ग वाले अन्य बच्चों की समझ से की जाए तो वे अपेक्षित स्तर तक नहीं पहुँचते। एक बढ़िया नायक होने के लिए वह अपने आन्तरिक संसाधनों पर निर्भर था। स्कूल के प्रमुख कार्य (यानी सीखने–सिखाने को सम्भव बनाना) के लिए शिक्षा विभाग को उसकी मदद को आना चाहिए था, लेकिन इस मदद में न केवल कमी थी बल्कि यह कमी भी एक बहुत बड़ी खाई के रूप में थी।

जब एक अन्य राज्य में एक सरकारी कार्यक्रम का मूल्यांकन किया गया तो पता चला कि नमूने के स्कूलों में से एक–तिहाई में प्रधान–शिक्षक का पद महीनों से खाली पड़ा था और 'कार्यकारी प्रधान शिक्षकों' से काम चलाया जा रहा था। ऐसा क्यों है कि प्रगतिशील राज्यों में भी स्कूल–प्रमुख या नायक के अभाव को गम्भीरता से नहीं लिया जाता?

योजना बनाना किसी संस्था या कार्यक्रम के प्रमुख की एक आवश्यक जिम्मेदारी होती है, लेकिन इसे अक्सर उसकी सम्पूर्णता में, या सरल–साधारण ढंग से भी, नहीं समझा जाता। पूर्वी भारत के एक राज्य के साथ काम करते हुए – और एक अन्य उदाहरण में प्रशिक्षण संस्थाओं के प्रधानाचार्यों के साथ काम करते हुए – जब वार्षिक योजना तैयार की गई तो उसमें एक दी गई समय–सीमा में विभिन्न कार्यों की सारणी बनाने का तत्व नदारद था। तारीखों और महीनों के उल्लेख के बिना क्या उस मसौदे को योजना की संज्ञा दी जा सकती थी?

> *शिक्षा व्यवस्था में नायकों को विकसित करने की तीव्र आवश्यकता का अहसास होना जरूरी है। सौभाग्य से, ऐसे लोगों में से अनेक के पास अपने जीवन–अनुभवों से हासिल कुछ कौशल होते हैं, पर उन्हें बस थोड़े से अतिरिक्त सहारे की जरूरत होती है, ताकि वे ऐसे नेता बन सकें, जो अहंकारी और केवल अपने बारे में सोचने वाले न होकर, आगे आने में और नेता बनने में दूसरों की मदद कर सकें।*

शिक्षा व्यवस्था में नायकों को विकसित करने की तीव्र आवश्यकता का अहसास होना जरूरी है। सौभाग्य से, ऐसे लोगों में से अनेक के पास अपने जीवन–अनुभवों से हासिल कुछ कौशल होते हैं, पर उन्हें बस थोड़े से अतिरिक्त सहारे की जरूरत होती है, ताकि वे ऐसे नेता बन सकें, जो अहंकारी और केवल अपने बारे में सोचने वाले न होकर, आगे आने में और नेता बनने में दूसरों की मदद कर सकें।

क्या स्कूल–प्रमुख ऐसे योद्धा हो सकते हैं जो कन्धे से कन्धा मिलाकर इस लड़ाई में शिक्षक के साथ खड़े हों? उन्हें प्राथमिक स्कूल में काम करने का अनुभव है या नहीं, इसे मुद्दा बनाना जरूरी नहीं है; महत्वपूर्ण यह है कि क्या वे कक्षा के मैदान में हो रहे काम में मददगार हो सकते हैं?

क्या यह सम्भव नहीं है कि नेतृत्व एक शिक्षक की तकलीफों और परेशानियों को सहृदयता से सुने? व्यवस्था में शिक्षकों की बात सुनने वाले किसी ऐसे व्यक्ति के अभाव में, जिसके आगे वे अपनी चिन्ताएँ और आशंकाएँ व्यक्त कर सकें, जब वहाँ कोई 'बाहर का' व्यक्ति पहुँचता है तो वे अक्सर उसे ही अपनी हताशा भरी व्यथा सुनाने लगते हैं। हो सकता है कि स्कूल–प्रमुख के पास उन्हें देने के लिए कोई सलाह या उत्तर न हो, पर क्या वह शिक्षकों को समय और सुविधा देकर उनकी समस्याएँ नहीं बाँट सकता, जिससे बहुत सम्भव है कि वे स्वयं अपने हल ढूँढ़ निकालें?

क्या स्कूल–प्रमुख ऐसा संगठनकर्ता या गड़रिया नहीं हो सकता जो स्कूल व्यवस्था के समग्र उद्देश्य को हासिल करने के मकसद से अपने अधीनस्थ लोगों के लिए आवश्यक शैक्षणिक पोषण और सहयोग का प्रबन्ध कर सके?

क्या नेतृत्व किसी शिक्षक को कक्षा का राजा या रानी होने की शक्ति का उचित उपयोग करने के काबिल नहीं बना सकता?– बच्चों पर अहसान करने के लिए नहीं, बल्कि देश के लक्ष्यों के अनुरूप लोकतान्त्रिक संस्कृति विकसित करने के लिए।

क्या शिक्षक स्कूल–प्रमुख से कहेगा, "कृपया मुझे मार्ग दिखाओ – मुझे सुदूर को देखने की कामना नहीं है, मेरे लिए बस एक कदम ही काफी है।''

या क्या शिक्षक यह कहना पसन्द करेगा, "... ऐसा मार्ग दिखाओ जो मन और मस्तिष्क को हमेशा विस्तृत होते विचार और कार्य की ओर ले जाता हो...।"

क्या शिक्षक को एक साधारण सिपाही की तरह कदम–कदम पर बस वैसा करना है जैसा उससे कहा जाता है, या शिक्षा में नेतृत्व देने वालों द्वारा उसके काम की विराटता और गहराई को उसके लिए इस रूप में खोला जा सकता है कि वह समर्थ और सशक्त बन पाए?

अमुक्ता महापात्रा वर्तमान में स्कूलस्केप की निदेशक हैं। इस संगठन का ध्यान कक्षा में पढ़ाई की गुणवत्ता बढ़ाने में स्कूलों, संगठनों और शिक्षा विभागों के लिए शिक्षकों और अन्य सहयोगी कार्यदलों के विकास पर केन्द्रित है। वे शिक्षकों की शिक्षा एवं विकास पर अनेक राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों तथा सरकार के लिए परामर्श कार्य कर चुकी हैं और इसी के चलते शिक्षा के क्षेत्र में उनकी अन्तर्दृष्टि महत्वपूर्ण है। उनसे aamukta.m@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।